भाषा विमर्श- अंग्रेज़ी के वर्चस्व के कारण दुर्गति व नई शिक्षा नीति में हिंदी का अस्पष्ट स्थान

विषय पर कुछ लिखने से पूर्व मैं आप सभी के समक्ष अपना अनुभव साझा करना चाहूँगा जो आप में से अधिकांश को अपना अनुभव लगेगा। मुझे बतौर छात्र अपने स्कूल में बिताए दिन अभी भी याद है। जब मुझे अंग्रेज़ी एक विदेशी एवं कठिन भाषा लगती थी, बावजूद इसके हम सभी पर वह थोपी या लाद दी गई। इसीलिए यह कहा जाता है 'अंग्रेज़ चले गए पर अंग्रेज़ियत रह गई'। शायद यह हम जैसे करोड़ों भारतीयों की पीड़ा है। यह दुर्भाग्य नहीं है तो क्या है कि एक विदेशी भाषा जो गुलाम बनाए रखने हेतु अधिनायकवाद की भाषा के रूप में हम सभी पर थोपी गई, उसका मानसिक कहर बदस्तूर जारी है।

आज भी छोटे या बड़े सभी शहरों के लोगों के लिए अंग्रेज़ी एक ज्ञान एवं सम्मान की भाषा बनी हुई है परंतु हमारी संस्कृति एवं संस्कार की भाषाएँ अज्ञानता एवं असमानता की भाषा बनकर अपने ही देश में तिरस्कार की भाषा बनी हुई है। धाराप्रवाह अंग्रेज़ी के नाम पर देश की गली-गली में खुले अंग्रेज़ी कोचिंग संस्थानों द्वारा दो दिनों में फर्राटेदार अंग्रेज़ी प्रशिक्षण प्राप्ति के बाद भी एवं तमाम उच्च एवं उच्चतर संस्थानों में पर्याप्त प्रोत्साहन के बावजूद आज भी 99 प्रतिशत भारतीय शुद्ध अंग्रेज़ी बोलने में सक्षम नहीं हैं।

इतने वर्षों तक लगातार अंग्रेज़ी माध्यम में शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी लोग बोलते समय हिंदी एवं अंग्रेज़ी की खिचड़ी बना देते हैं, जिसे आजकल हिंग्लिश कहा जाता है। हिंग्लिश मूल रूप से इसी भाषाई अपसंस्कृति का परिणाम है। 2011 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार देश में अंग्रेज़ी बोलने वालों की संख्या 2.68 लाख, यानी मात्र 0.02 प्रतिशत है अर्थात् देश की 99.98 फीसदी आबादी पर 0.02 प्रतिशत लोगों का वर्चस्व है।

अपनी नौकरी के अखिल भारतीय स्वरूप के कारण भी विविध स्थानों पर पदस्थापना एवं भाषा के विद्यार्थी होने के नाते मैंने यह महसूस किया है कि भारत के कथित कॉन्वेंट विद्यालय के बच्चे हों या ग्रामीण बच्चे सभी की प्रतिभा को अंग्रेज़ी हथौड़े से कुंद करने का प्रयास किया गया।

मुझे आज भी याद है वर्ष 2011 में एक व्याख्यान हेतु मैं राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एनआईटी)

दुर्गापुर में आमंत्रित था। उस दौरान मैंने वहाँ के छात्रों से अंग्रेज़ी माध्यम को लेकर कुछ प्रश्न पूछे थे, जिसमें ज्यादातर दक्षिण भारत विशेष रूप से केरल एवं तमिलनाडु के छात्र थे तथा पूर्णतया अंग्रेज़ी माध्यम में दीक्षित छात्र थे, बावजूद उन्हें प्रथम दो सेमेस्टर में अंग्रेज़ी के कारण पाठ्यक्रम समझने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा था।

उसके बाद उनमें से ज्यादातर का लक्ष्य था कैसे भी पास होकर डिग्री लेकर विदेश जाकर नौकरी की जाए। शोध करना उनके लिए बड़ा ही दुष्कर कार्य था, जिसमें अंग्रेज़ी एक प्रमुख कारण था। दरअसल अंग्रेज़ी या कोई भी विदेशी भाषा पर हद से ज्यादा निर्भरता व्यक्ति को उसके मूल चिंतन से दूर करती है। इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि अंग्रेज़ी माध्यम की पीड़ा क्या है। इस माध्यम ने लोगों को शिक्षा के मूल उद्देश्य से ही दूर करने का कार्य किया है।

आप देश के किसी भी अभिभावक से पूछ लें तो वे बोलेंगे 'बच्चों की प्रगति के मार्ग में गणित की अपेक्षा अंग्रेज़ी बड़ी बाधा है।' शिक्षक भी बोलेंगे कि उनके लिए अंग्रेज़ी से तालमेल बिठाना कठिन है। भाषाएँ केवल शिक्षा का माध्यम नहीं होती अपितु वे देश, समाज, काल, संस्कार, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, परिस्थितियों से जुड़ने का एक सशक्त माध्यम भी होती है। एक प्रकार भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा, शिक्षक एवं छात्र तीनों के लिए विवशता एवं बाध्यता बनकर उभरी है। फिर भी औपनिवेशिक मानसिकता के कारण अंग्रेज़ी जबरदस्ती जमी हुई है।

इस अंग्रेज़ी ने देश के करोड़ों बच्चों को दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया है। उन्हें भाषाई असमानता की इस अंधी खाई में इस प्रकार से धकेला गया है कि वे अपनी ही समाज, संस्कृति को हेय मानने लगे हैं। हमारे समाज में यह सामान्य धारणा है कि सरकारी स्कूलों में गरीब घरों के बच्चे पढ़ते हैं तथा उन स्कूलों के बच्चों को हम दोयम दर्जे का नागरिक मानते हैं। किसी भी विकसित देश के मुकाबले यह स्थिति उलट है।

यह कौन-सी नीति है जो बहुसंख्यक समाज को केवल एक भाषा के नाम पर ज्ञान-विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा विज्ञान इत्यादि से काट दे। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारत आज भी सबसे ज्यादा स्नातक जनसंख्या वाले देशों में अग्रणी होने के बावजूद विज्ञान, तकनीक एवं चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा एवं शोधकर्ताओं में काफी पीछे है। इसका मूल कारण एक सशक्त भाषा के विचार को दरकिनार किया जाना है।

दक्षिण कोरिया, जापान एवं इज़राइल जैसे देश सक्षम एवं सशक्त अपनी भाषा के बल पर हुए हैं। परंतु भारत की सक्षमता एवं सशक्तता में सबसे बड़ी बाधा अंग्रेज़ी माध्यम की अनिवार्यता है। भारत की आत्मनिर्भरता में सबसे बड़ी बाधा अंग्रेज़ी के प्रति अंध मोह है।

सबसे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि गीत, नृत्य, फिल्मों आदि के लिए तो देशी भाषाएँ ठीक हैं परंतु विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा विज्ञान आदि के लिए अंग्रेज़ी अनिवार्य है। सभी समृद्ध भाषा विचारकों ने यह माना है कि देश की समृद्धि हेतु देशी भाषा का वातावरण तैयार करना आवश्यक है जिसमें सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा स्वभाषा में समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। एक मजबूत लोकतांत्रिक भारत इसी आधार पर निर्मित हो सकता है।

हम अक्सर भारतीय समाज की जन्मना आधारित कुप्रथा जाति व्यवस्था को गाली देते नहीं थकते परंतु अंग्रेज़ी श्रेणीवाद की बुराइयों पर भी चिंतन जरूरी है। अंग्रेज़ी ने इस देश में एक अलग ही श्रेणी की संरचना की है, जिसकी परिकल्पना लार्ड मैकाले ने की थी, दुर्भाग्यवश मैकाले के मानस पुत्रों ने इस देश में अंग्रेज़ी को एक भाषा से अधिक सम्मान दिया, जो भारत के तमाम क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, असमानता एवं आत्महीनता का कारक बना।

अंग्रेज़ी के नाम पर जान-बूझकर ऐसी धारणा स्थापित की गई कि भारत की वर्तमान आर्थिक प्रगति में इसका एकमात्र योगदान है। जबकि स्थिति इसके उलट है। स्थिति यह है कि दुनिया के 20 धनी राष्ट्रों में मात्र 4 में ही अंग्रेज़ी आधारित व्यवस्था है। दुनिया में ब्रिटिश राजसत्ता के अधीन रहे राष्ट्रों ने ही अंग्रेज़ी को हद से ज्यादा महत्त्व दिया है। उनका यह मिथ्या भ्रम है कि केवल अंग्रेज़ी ही विकास का आधार है। इसी का परिणाम है अपनी हर चीज़ को निकृष्ट समझना तथा स्वभाषा में ज्ञान-विज्ञान से हीन समझना। अविकसित होने का एक प्रमुख कारण भाषाई रूप से अपने को कमजोर रखना भी है।

इस दिशा में हम एशिया की प्रमुख आर्थिक शक्तियों यथा, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया से सीख ले सकते है। आँकड़ों के अनुसार, एशिया की प्रमुख 1,000 कंपनियों में से 792 इन्हीं 3 देशों से हैं क्योंकि इन देशों यथा, जापान, दक्षिण कोरिया एवं ताइवान में स्वभाषा का पर्याप्त महत्व है। इससे समूचे राष्ट्र की बौद्धिक क्षमता का दोहन संभव हो पाता है।

भारत में उच्च एवं उच्चतर शिक्षा अंग्रेज़ी पर केंद्रित होने से हमारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग बौद्धिक रूप से अविकसित है। इसमें दोषपूर्ण शिक्षा नीति का भी योगदान है। अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश परीक्षा एवं साक्षात्कार अंग्रेज़ी में होता है। एक चिकित्सक (डॉक्टर), अभियंता (इंजीनियर), सनदी लेखाकार (सीए), न्यायमूर्ति आदि बनने के लिए अंग्रेज़ी अनिवार्य है। सरकार भी हिंदी के राजभाषा होने के बावजूद सरकारी अनुदान प्राप्त संस्थाओं में अंग्रेज़ी को बढ़ावा देती है।

यह देश का दुर्भाग्य है कि आप भारतीय भाषाओं से परीक्षा देकर सेना में एक जवान तो बन सकते हैं, परंतु एक अधिकारी बनने के लिए आपको परीक्षा अंग्रेज़ी में ही देनी होगी। अधिकांश भारतीयों पर उच्च शिक्षा हेतु अंग्रेज़ी भाषा की अनिवार्यता थोपना अपने-आप में एक महत्वपूर्ण आर्थिक बोझ है। अंग्रेज़ी एक ऐसी भाषा के रूप में सामने आती है, जो भारत की प्रगति के बजाय पिछड़ापन का कारण बनकर सामने आती है।

भारत में अक्सर यह भ्रम फैलाया जाता है कि सॉफ्टवेयर ज्ञान के लिए अंग्रेज़ी जानना आवश्यक है। परंतु यह विचार देश की तकनीकी प्रगति के लिए घातक है। अंग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा भारत में कम्प्यूटर शिक्षा के विकास के लिए बड़ी बाधा है। यह तथ्य भारत के नीति-निर्माताओं को समझना होगा। उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी का वर्चस्व हमारी आत्महीनता के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है। ज़रूरत है अंग्रेज़ी के इस वर्चस्व को तोड़ने की।

भाषा कोई भी बुरी नहीं होती, परंतु स्वभाषा का विकल्प एक विदेशी भाषा कदापि नहीं ले सकता। विशेष रूप से इस देश की उच्च शिक्षा, न्यायालय एवं शासन से अंग्रेज़ी को विस्थापित करना होगा ताकि भाषाई विकलांग पैदा न हो सके। इस हेतु यह ज़रूरी है कि राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी एवं राज्य स्तर

पर प्रादेशिक भाषाओं को व्यापकता मिले। विद्यालयों में अंग्रेज़ी को प्रथम भाषा के तौर पर समाप्त किया जाए। सभी परीक्षाओं में भारतीय भाषा के माध्यम से समान अवसर प्रदान किया जाए।

साथ ही यह ज़रूरी है कि राष्ट्र संविधान के मूल्यों के तहत एक ऐसी भाषा का विकास, प्रचार-प्रसार करें जिसे राष्ट्र की बहुसंख्यक आबादी समझती हो और यह भाषा हिंदी है जो राजभाषा के रूप में राष्ट्रभाषा की पूरक है। हाल में सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की है। परंतु इसमें भी संघ की राजभाषा या राष्ट्रभाषा का स्पष्टता से उल्लेख नहीं किया गया है, क्या यह संविधान के अनुच्छेद-351 का अपमान नहीं है।

सरकार को नई शिक्षा नीति में स्वतंत्रता आंदोलन की भाषा, एकता व अखंडता की भाषा, राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा 'हिंदी' का स्पष्टता से उल्लेख करना चाहिए। राष्ट्रभाषा किसी भी देश की आत्मा होती है अत : इसका समुचित सम्मान करना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है। आइए, भारतीय साहित्य के महान श्लाका पुरुष भारतेंदु हरिश्चंद की पंक्तियों को स्मरण करते हुए राजभाषा हिंदी एवं प्रादेशिक भाषाओं की मजबूती के लिए कार्य करें।

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥"

साभार-https://hindi.swarajyamag.com/ से